

राम कुमार दास

बनाम

जगदीश चंद्र देब धबल देब

और एक अन्य।

26 नवंबर 1951

[पतंजलि शास्त्री मुख्य न्यायाधीश, मुखर्जी, दास

और विवियन बोस न्यायमूर्तिगण]

सम्पत्ति अंतरण अधिनियम (1882 का IV), धाराएं 106, 107-पट्टे की अवधि-उपधारणा-10 वर्षों के लिए कबूलियत-केवल दो वर्षों के लिए वार्षिक भाड़े का भुगतान-कबूलियत अप्रवर्तनीय-दो वर्षों के बाद कब्जे की प्रकृति-क्या प्रतिकूल है, वर्ष-दर-वर्ष भाड़ेदार के रूप में, या मासिक भाड़ेदार के रूप में-विवक्षित किरायदारियों पर धारा 106 की प्रयोज्यता-वार्षिक भाड़े के भुगतान से उपधारणा।

सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 में सन्निहित निर्वचन का नियम न केवल अनिश्चित अवधि के अभिव्यक्त पट्टों पर लागू होता है बल्कि विधि द्वारा विवक्षित पट्टों पर भी लागू होता है जिनका अनुमान कब्जे और भाड़े की स्वीकृति तथा अन्य परिस्थितियों से लगाया जा सकता है, उक्त धारा द्वारा विचारित इसके विपरीत अनुबंध का अभिव्यक्त अनुबंध होना आवश्यक नहीं है; यह विवक्षित हो सकता है, परंतु यह राम कुमार दास एक वैध अनुबंध होना चाहिए। यदि अनुबंध अवैध है तो यह धारा पट्टे की अवधि को विनियमित करेगी।

जब आरक्षित भाड़ा एक वार्षिक भाड़ा है, तो एक उपधारणा उत्पन्न होगी कि किरायदारी एक वार्षिक किरायदारी थी जब तक कि इस उपधारणा का खंडन करने के लिए

कुछ न हो। परंतु सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के अंतर्गत वर्ष-दर-वर्ष या वार्षिक भाड़ा आरक्षित करने वाली किरायदारी केवल एक पंजीकृत विलेख द्वारा ही बनाई जा सकती है।

प्रतिवादी ने रिसीवर को एक पंजीकृत कबूलियत निष्पादित की, जो एक वाद के लंबित रहने के दौरान एक संपदा का प्रबंधन कर रहा था, जिसके माध्यम से उसने 46 रुपये प्रति वर्ष के भाड़े पर दस वर्षों की अवधि के लिए भूमि का एक भूखंड पट्टे पर लेने का तात्पर्य किया और 8 मार्च, 1925 को 46 रुपये के पहले वर्ष के भाड़े का भुगतान किया, और 16 मार्च, 1926 को अगले वर्ष के भाड़े का भुगतान किया। उस तिथि के बाद प्रतिवादी द्वारा न तो रिसीवर को और न ही स्वत्वधारी को किसी अन्य भाड़े का भुगतान किया गया था। स्वत्वधारी ने, मानते हुए प्रतिवादी को एक मासिक भाड़ेदार, उस पर छोड़ने की सूचना परिदत्त की 18 जुलाई, 1942 को, उसे 7 अगस्त, 1942 को रिक्त करने के लिए कहते हुए, और जुलाई, 1943 में निष्कासन के लिए एक वाद संस्थित किया। कबूलियत विधि में अप्रवर्तनीय पाई गई और प्रतिवादी ने तर्क दिया कि 1925 और 1926 में वार्षिक भाड़े के भुगतान और स्वीकृति ने एक मासिक किरायदारी उत्पन्न नहीं की बल्कि लगातार दो वर्षों के लिए प्रत्येक एक वर्ष के लिए दो किरायदारियां उत्पन्न कीं, कि भूस्वामी और भाड़ेदार का संबंध दूसरे वार्षिक पट्टे की समाप्ति पर समाप्त हो गया, और, चूंकि कोई अतिधारण नहीं था, वाद समय-बाधित था :

अभिनिर्धारित (i) कि तथ्यों से यह उपधारणा की जा सकती है कि एक किरायदारी 1924 से अस्तित्व में आई थी; (ii) चूंकि किरायदारी का प्रयोजन भूमि पर संरचनाओं का निर्माण करना था, धारा 106 के अंतर्गत सम्पत्ति अंतरण अधिनियम के, किरायदारी को उपधारित किया जाना चाहिए महीने-दर-महीने का, इसके विपरीत अनुबंध के अभाव में; (iii) यह अनुबंध कि किरायदारी एक निश्चित वर्ष के लिए थी वर्तमान वाद में इस तथ्य से अनुमानित नहीं किया जा सकता कि 1925 और 1926 में एक वार्षिक भाड़े का भुगतान

किया गया था, क्योंकि कबूलियत, यद्यपि विधि में अप्रवर्तनीय है, दर्शाती है कि पक्षकारों का आशय कभी भी एक वर्ष के लिए पट्टा बनाने का नहीं था; (iv) वाद के तथ्यों पर यह अभिनिर्धारित करना पूर्णतः उचित था कि भाड़ेदारी 1924 में अपने आरंभ से ही मास-दर-मास की थी और वाद समय-वर्जित नहीं था।

देबेंद्र नाथ बनाम श्यामा प्रसन्ना (11 सी.डब्ल्यू.एन. 1124) और शेख अक्लू बनाम इमामन (आई.एल.आर. 44 कलकत्ता 403) अनुमोदित।

अजीज अहमद बनाम अलाउद्दीन अहमद (ए.आई.आर. 1933 पटना 485), मो. मूसा बनाम जगानंद (20 आई.सी. 715) और मोतीलाल बनाम दार्जिलिंग नगर पालिका (17 सी.एल.जे. 167) संदर्भित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1950 की दीवानी अपील सं. 114। पटना उच्च न्यायालय (शीयर और रूबेन न्यायमूर्तिगण) के एक निर्णय और डिक्री से अपील दिनांक 5 नवम्बर, 1948, 1946 की अपील सं. 2064 में, जो पुरुलिया के जिला न्यायाधीश की एक डिक्री से 1945 की स्वत्व अपील सं. 116 में उद्भूत है। तथ्य निर्णय में पूर्णतः वर्णित हैं।

एम. सी. सीतलवाड़, भारत के महान्यायवादी, (नंदलाल उंटवालिया, उनके साथ) अपीलकर्ता और अन्य की ओर से।

बी. सी. डे (ज्योतिर्मय घोष, उनके साथ) उत्तरदाता की ओर से।

1951. नवम्बर 26. न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा सुनाया गया

मुखर्जी, न्यायमूर्ति-यह अपील प्रतिवादी की ओर से है और यह चाईबासा में अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में, वादी उत्तरदाता द्वारा संस्थित एक वाद से उद्भूत है, वादपत्र की अनुसूची में वर्णित भूमि के आधिपत्य की वसूली के लिए, इस आरोप पर कि प्रतिवादी उसी के संबंध में एक मासिक भाड़ेदार था, और कि किरायदारी छोड़ने की सूचना द्वारा समाप्त की गई थी। वाद विचारण न्यायालय द्वारा डिक्रीत किया गया था और निर्णय की पुष्टि अपील पर, जिला न्यायाधीश, पुरुलिया द्वारा, और द्वितीय अपील पर, पटना उच्च न्यायालय की खंड पीठ

द्वारा की गई थी। प्रतिवादी अब इस न्यायालय में आया है दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 110 के अंतर्गत प्रदत्त एक प्रमाणपत्र के आधार पर।

प्रतिवादी-अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित होने वाले, श्री सीतलवाड़ ने आरंभ में ही हमसे कहा कि वह उनके पक्षकार पर परिदत्त की गई छोड़ने की सूचना की वैधता या पर्याप्तता पर विवाद नहीं करेंगे, यदि इस वाद के तथ्यों पर उसे वादग्रस्त परिसर के संबंध में वादी के अधीन एक मासिक भाड़ेदार अभिनिर्धारित किया जाता है। उनका तर्क, सार रूप में, यह है कि प्रतिवादी किसी भी समय वादी या उसके पूर्ववर्ती के अधीन एक मासिक भाड़ेदार नहीं था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, लगातार दो अवधियों के लिए प्रत्येक एक वर्ष के लिए दो भाड़ेदारियां हो सकती थीं, परंतु दूसरे वार्षिक पट्टे की समाप्ति पर, जो 7 दिसम्बर, 1926 को हुई, प्रतिवादी भाड़ेदार नहीं रहा और अतिधारण द्वारा कोई नई भाड़ेदारी उत्पन्न नहीं हुई जैसा कि सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 द्वारा विचारित है। चूंकि कोई अतिधारण नहीं था, इसलिए सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के उपबंध के अंतर्गत किसी मासिक भाड़ेदारी के अस्तित्व में आने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता था, और वादी का वर्तमान वाद, जिसे स्वीकार्य रूप से दूसरे वार्षिक पट्टे की समाप्ति के 12 वर्षों से अधिक समय बाद लाया गया है, बाधित है भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 139 के अंतर्गत परिसीमा द्वारा। इस प्रकार इस अपील में संपूर्ण विवाद केन्द्रित है इस बिंदु पर कि क्या प्रतिवादी वास्तव में उस तिथि पर वादी के अधीन एक मासिक भाड़ेदार था जब उस पर छोड़ने की सूचना परिदत्त की गई थी। दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा इस बिंदु पर प्रस्तुत किए गए संबंधित तर्कों को समझने के लिए, यह आवश्यक होगा कि भौतिक तथ्यों को उनके कालानुक्रमिक क्रम में संक्षेप में वर्णित किया जाए।

वादग्रस्त सम्पत्ति 4 बीघा 12 कट्ठा माप वाला भूमि का एक भूखंड है, और सिंहभूम जिले के जुगसलाई गांव के पुराने सर्वेक्षण भूखंड सं. 573 में समाविष्ट है। सम्पूर्ण गांव धालभूम संपदा का हिस्सा है, जिसका वादी स्वीकार्य रूप से वर्तमान स्वत्वधारी है। एक चरन

भूमिजी 1913 से कुछ समय पूर्व से जुगसलाई गांव का "प्रधान" था और 24 जुलाई, 1913 को, प्रतिवादी के पिता ने, एक पंजीकृत पट्टा द्वारा, खेती के प्रयोजनों के लिए इस प्रधान से सर्वेक्षण भूखंड सं. 573 से संबंधित लगभग 31 बीघा भूमि का पट्टा लिया था। यह विवादित नहीं है कि वादग्रस्त संपत्ति इस पट्टे के अंतर्गत आती है। उस समय धालभूम संपदा का स्वत्वधारी राजा शत्रुघ्न था और 1916 में उसकी मृत्यु हो गई, वह अपने पीछे एक वसीयत छोड़ गया जिसके द्वारा संपूर्ण संपदा वर्तमान वादी को वसीयत कर दी गई थी। वसीयत के अंतर्गत वादी के दावे को एक प्रताप चंद्र देव धबल द्वारा चुनौती दी गई थी जो सिंहभूम कलेक्ट्रेट में ज़मींदारी के स्वत्वधारी के रूप में अपना नाम दर्ज कराने में सफल रहा। तत्पश्चात वादी ने ज़मींदारी पर अपने स्वत्व की स्थापना के लिए मिदनापुर में अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में एक वाद (1921 का स्वत्व वाद सं. 67 होने के नाते) संस्थित किया और वाद विचारण न्यायाधीश द्वारा डिक्रीत किया गया था। इस निर्णय के विरुद्ध, प्रतिवादी प्रताप चंद्र देव धबल ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में अपील की और इस अपील के लंबित रहने के दौरान, उच्च न्यायालय ने एक रिसीवर नियुक्त किया जिसे संपूर्ण संपदा का कब्जा सौंपा गया था। 8 दिसम्बर, 1924 को, प्रतिवादी ने रिसीवर के पक्ष में एक पंजीकृत कबूलियत निष्पादित की, जिसके द्वारा उसने 46 रुपये प्रति वर्ष के भाड़े और 250 रुपये की सलामी पर 10 वर्षों की अवधि के लिए वादग्रस्त भूमि का बंदोबस्त लेने का तात्पर्य किया। पट्टे में एक प्रसंविदा था, जो शाश्वत नवीनीकरण के जैसा दिखता है, और इसका प्रभाव यह था कि अवधि की समाप्ति पर, यदि पट्टाकर्ता को अपने स्वयं के प्रयोजनों के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं थी और उसने इसे फिर से बसाने का निर्णय लिया, तो पट्टेदार बड़े हुए भाड़े पर और ऐसी शर्तों पर, जिन पर तत्कालीन पक्षकारों के बीच सहमति हो सकती है, नए बंदोबस्त का हकदार होगा। अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि 250 रुपये की सलामी राशि, कबूलियत के निष्पादन से कई महीने पहले प्रतिवादी द्वारा रिसीवर को भुगतान की गई थी, और 46 रुपये की भाड़ा राशि का भुगतान पहली बार 8 मार्च, 1925 को किया गया था। भाड़े

का अगला भुगतान अनुगामी वर्ष में, 16 मार्च, 1926 को किया गया था। स्वीकार्य रूप से, पट्टेदार द्वारा तब से लेकर इस अवधि तक रिसीवर या स्वत्वधारी को कोई अन्य भाड़े का भुगतान नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय ने प्रताप चंद्र देव धबल द्वारा दायर अपील को 1924 में कुछ समय बाद खारिज कर दिया और खारिज करने के इस आदेश की पुष्टि मई 1927 में न्यायिक समिति द्वारा की गई। रिसीवर को तब कार्यमुक्त कर दिया गया और वादी को जुलाई 1927 में संपूर्ण संपदा का कब्जा मिल गया। 15 अप्रैल, 1937 को, वादी ने चाईबासा में अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में इस संपत्ति के संबंध में प्रतिवादी के विरुद्ध निष्कासन के लिए एक वाद (1937 का स्वत्व वाद सं. 2 होने के नाते) लाया। दावा सारतः 24 दिसम्बर, 1924 को प्रतिवादी द्वारा निष्पादित कबूलियत की शर्तों पर आधारित था, और वाद, वास्तव में, पट्टे में उपबंधित अवधि की समाप्ति पर पट्टेदार के निष्कासन के लिए था। यह केवल कबूलियत में नवीनीकरण खंड था जिसे न केवल इसलिए अवैध और अप्रवर्तनीय के रूप में चुनौती दी गई थी क्योंकि यह अस्पष्ट और अनिश्चित था, बल्कि इस आधार पर भी कि रिसीवर ने इस प्रकार की शर्त दर्ज करने में अपने प्राधिकार से परे कार्य किया था।

प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में वादी के कब्जे के दावे का प्राथमिक रूप से इस आधार पर विरोध किया कि उसने 1913 के प्रधान के पट्टे के अंतर्गत भूमि में स्थायी अधिकार प्राप्त कर लिया था और तब से 12 वर्षों से अधिक समय तक इस पर निरंतर कब्जा रहा। उसने 1924 की कबूलियत की पूरी तरह से उपेक्षा करने का प्रयास किया। यह कहा गया था कि यह केवल रिसीवर के हाथों परेशानी और उत्पीड़न से बचने के लिए निष्पादित किया गया था और कि, पट्टे के रूप में अप्रवर्तनीय होने के कारण यह, किसी भी दृष्टि से, उन पूर्व अधिकारों को प्रभावित नहीं कर सकता था जो उसने 1913 के पट्टे के अंतर्गत प्राप्त किए थे।

विचारण न्यायाधीश ने वाद को डिक्रीत किया। अपील पर, निर्णय को जिला न्यायाधीश द्वारा उलट दिया गया और वादी का वाद केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया

गया कि प्रतिवादी पर परिदत्त की गई छोड़ने की सूचना भाड़ेदारी को समाप्त करने के लिए विधि में प्रभावहीन थी। जिला न्यायाधीश ने पाया, सबसे पहले, कि प्रधान का पट्टा विधि में शून्य और अप्रवर्तनीय था और प्रतिवादी में कोई अधिकार उत्पन्न नहीं कर सकता था, क्योंकि प्रधान को इस प्रकृति की भूमि का बंदोबस्त करने का कोई प्राधिकार नहीं था। 1924 की कबूलियत को भी प्रभावहीन अभिनिर्धारित किया गया क्योंकि यह सम्पत्ति अंतरण अधिनियम द्वारा यथा परिभाषित पट्टे के समतुल्य नहीं थी। तथापि, जिला न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि कबूलियत के अतिरिक्त, वर्ष 1925 और 1926 में भाड़े के भुगतान और स्वीकृति द्वारा एक भाड़ेदारी उत्पन्न हुई थी और 1926 के बाद प्रतिवादी ने सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के अंतर्गत अतिधारण द्वारा एक मासिक भाड़ेदार का स्थान ग्रहण किया। ऐसी भाड़ेदारी को पंद्रह दिनों की सूचना द्वारा समाप्त किया जा सकता था, जो भाड़ेदारी के मास के साथ समाप्त होती है, परंतु चूंकि सूचना, जो वादी द्वारा प्रतिवादी पर परिदत्त की गई थी, ने इस आवश्यकता को पूरा नहीं किया, इसलिए वादी का वाद विफल होना निश्चित था। जिला न्यायाधीश ने, यद्यपि उसने वाद निरस्त कर दिया, वादी को इस प्रभाव की एक घोषणा दी कि प्रतिवादी भाड़ेदारी के बंगाली मास के अंत में समाप्त होने वाली पंद्रह दिनों की सूचना के परिदान पर बेदखली के दायित्वाधीन था। इस निर्णय के विरुद्ध, वादी ने पटना उच्च न्यायालय में एक अपील की, और अपील हैरिस सी.जे. और फज़ल अली न्यायमूर्ति के समक्ष सुनवाई के लिए आई। विद्वान न्यायाधीशों ने अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय के इस निष्कर्ष की पुष्टि की कि प्रधान के पट्टे ने प्रतिवादी में कोई अधिकार उत्पन्न नहीं किया और कि 1924 की कबूलियत भी प्रतिवादी को कोई भाड़ेदारी अधिकार देने के लिए पट्टे के रूप में प्रभावहीन थी। उन्होंने अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी ने चिरभोग या अन्यथा द्वारा भूमि में कोई स्थायी अधिकार प्राप्त नहीं किया और कि वर्ष 1925 और 1926 में रिसीवर को भाड़े के भुगतान के कारण वह मास-दर-मास का भाड़ेदार बन गया। इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने जिला न्यायाधीश के साथ सहमति व्यक्त करते हुए

अभिनिर्धारित किया कि छोड़ने की सूचना भाड़ेदारी को समाप्त करने के प्रयोजन के लिए अपर्याप्त थी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष यह स्थापित करने का कठोर प्रयास किया कि चूंकि 1913 का पट्टा और साथ ही 1924 की कबूलियत दोनों अवैध और अप्रवर्तनीय थे, वह वादग्रस्त भूमि के संबंध में कभी भाड़ेदार नहीं था और भाड़े के दो भुगतानों द्वारा कोई भाड़ेदारी उत्पन्न नहीं की जा सकती थी, क्योंकि रिसीवर के पास उन्हें प्राप्त करने का कोई प्राधिकार नहीं था। अतएव, यह तर्क दिया गया कि वादी हर समय एक अतिचारी के रूप में भूमि के कब्जे में था और इस प्रकार प्रतिकूल कब्जे द्वारा एक अच्छा स्वत्व प्राप्त कर लिया। उच्च न्यायालय ने, यद्यपि यह निश्चित रूप से अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी मास-दर-मास का भाड़ेदार था, तथापि इस प्रश्न को खुला रखा कि क्या रिसीवर को भाड़े का भुगतान वादी को भुगतान के समान था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि छोड़ने की सूचना त्रुटिपूर्ण थी, यह वाद को निरस्त करने के लिए पर्याप्त था, और अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय की डिक्री में की गई यह घोषणा कि प्रतिवादी भाड़ेदारी के बंगाली मास के साथ समाप्त होने वाली पंद्रह दिनों की सूचना के परिदान पर बेदखल किए जाने के दायित्वाधीन था, को हटाने का निदेश दिया गया। उच्च न्यायालय का यह निर्णय 5 मई, 1942 को सुनाया गया था।

इसके तुरंत बाद 18 जुलाई, 1942 को, वादी ने प्रतिवादी पर छोड़ने की सूचना परिदत्त की, जिसमें उसे आगामी 7 अगस्त को भूमि रिक्त करने के लिए कहा गया, और चूंकि प्रतिवादी ने कब्जा छोड़ने से इंकार कर दिया, वर्तमान वाद 22 जुलाई, 1943 को लाया गया। वर्तमान वाद में वादपत्र बहुत ही साधारण है; यह पूर्णतः पूर्व न्यायिक कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों पर आगे बढ़ता है। कब्जे का अधिकार 1924 की कबूलियत की शर्तों पर आधारित नहीं है। वादी का कथन है कि 8 मार्च, 1925, और 16 मार्च, 1926 को भाड़े के भुगतान के कारण, प्रतिवादी उसके अधीन मास-दर- धबल देब मास

का भाड़ेदार बन गया और भाड़ेदारी को छोड़ने की एक उचित सूचना द्वारा समाप्त कर दिया गया था।

प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में वादी के दावे के उत्तर में कई दलीलें उठाईं। उसने 1913 के पट्टे के अंतर्गत अपने अधिकारों को दोहराया और आग्रह किया कि लंबी अवधि के लिए स्थायी भाड़ेदारी अधिकार के प्राख्यान पर भूमि पर कब्जा रखने के कारण, उसने संपत्ति पर एक वैध स्वत्व प्राप्त कर लिया। 1924 की कबूलियत के संबंध में, लिखित कथन के एक भाग में यह कहा गया है कि प्रतिवादी ने तथ्यों की भ्रांति भ्रांति के अंतर्गत इसकी विषय-वस्तु को जाने बिना इस दस्तावेज को निष्पादित किया था। परंतु एक अन्य स्थान पर यह कथित है कि कबूलियत वादी पर बाध्यकारी थी और वह इसकी शर्तों के उल्लंघन में कोई वाद संस्थित करने का हकदार नहीं था, बिना किसी भी स्थिति में सलामी राशि वापस किए। प्रतिवादी ने स्वीकार किया, जिसे उसने पूर्व वाद में अस्वीकार किया था, कि रिसीवर को किए गए भुगतान स्वयं वादी को किए गए भुगतानों के समतुल्य थे, यद्यपि इस प्रश्न को उच्च न्यायालय द्वारा पूर्व अवसर पर खुला छोड़ दिया गया था। लिखित कथन में उठाई गई अन्य दलीलें भौतिक नहीं हैं, सिवाय इसके कि एक विशिष्ट बिंदु लिया गया था, जिसमें प्रतिवादी पर परिदत्त की गई छोड़ने की सूचना की पर्याप्तता को चुनौती दी गई थी।

इन अभिवचनों पर कई विवादक विरचित किए गए थे। विचारण न्यायाधीश ने अपने समक्ष रखी गई सामग्रियों पर विचार करने के उपरांत अभिनिर्धारित किया कि प्रधान का पट्टा एक शून्य और अप्रवर्तनीय दस्तावेज था और इसने प्रतिवादी को कोई अधिकार प्रदान नहीं किया। उसने उस वाद को नकार दिया, जिसे प्रतिवादी ने सुनवाई के दौरान बनाने का प्रयास किया था, कि उसके द्वारा निष्पादित कबूलियत धमकी और प्रपीड़न द्वारा प्राप्त की गई थी। अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा इस बिंदु पर पटना उच्च न्यायालय के निर्णयों के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया कि कबूलियत सम्पत्ति अंतरण अधिनियम के अंतर्गत एक पट्टे के रूप में प्रवृत्त नहीं हो सकती थी, और परिणामस्वरूप प्रतिवादी ने उसी के अंतर्गत एक

पट्टेदार के अधिकार प्राप्त नहीं किए। तथापि, उसने अभिनिर्धारित किया कि भाड़े के भुगतान और स्वीकृति द्वारा कबूलियत के बाहर एक नई भाड़ेदारी उत्पन्न की गई थी, और चूंकि नई भाड़ेदारी निर्माण प्रयोजनों के लिए थी, यह सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के अंतर्गत पंद्रह दिनों की सूचना द्वारा समाप्त एक मास भाड़ेदारी दर मास थी। चूंकि सूचना उचित और पर्याप्त थी, विचारण न्यायाधीश ने वादी का वाद डिक्रीत कर दिया। इस निर्णय के विरुद्ध, प्रतिवादी ने जिला न्यायाधीश, पुरुलिया के न्यायालय में अपील की, और जिला न्यायाधीश ने अपील को निरस्त कर दिया और विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी अपील के समर्थन में जिला न्यायाधीश के समक्ष प्रतिवादी द्वारा दो बिंदु उठाए गए थे एक यह था कि 1924 की कबूलियत एक पट्टे के रूप में प्रभावी थी और परिणामस्वरूप प्रतिवादी को उसकी शर्तों के उल्लंघन में बेदखल नहीं किया जा सकता था। उसी समय यह तर्क दिया गया था कि वादी के अधीन प्रतिवादी द्वारा कोई भाड़ेदारी बिल्कुल भी नहीं रखी गई थी, क्योंकि रिसीवर को किए गए भुगतानों को वादी को किए गए भुगतानों के रूप में नहीं माना जा सकता था। प्रथम बिंदु, जिसे जिला न्यायाधीश ने इंगित किया, पटना उच्च न्यायालय के अभिव्यक्त निर्णयों के विपरीत था, जबकि दूसरा लिखित कथन में प्रतिवादी की अपनी ही स्वीकृति के विरोधाभासी था।

प्रतिवादी तब पटना उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील में आया और अपील पर शीयर और रूबेन न्यायमूर्तिगण से मिलकर बनी एक खंड पीठ द्वारा सुनवाई की गई। विद्वान न्यायाधीशों ने अपील निरस्त करने और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा की गई डिक्री की पुष्टि करने में सहमति व्यक्त की, परंतु वे आधार जिन पर उन्होंने अपना निर्णय आधारित किया, समान नहीं हैं। प्रतिवादी से भाड़े का भुगतान रिसीवर द्वारा स्वीकार किए जाने के परिणामस्वरूप विधि की विवक्षा द्वारा उत्पन्न भाड़ेदारी की प्रकृति के संबंध में, रूबेन, न्यायमूर्ति द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब रिसीवर ने 1925 में भाड़ा स्वीकार किया, तो यह उपधारित किया जाना चाहिए कि पक्षकारों का आशय एक वर्ष के लिए

भाड़ेदारी उत्पन्न करने का था और जब उसने 1926 में पुनः भाड़ा स्वीकार किया, तो ऐसी स्वीकृति प्रतिवादी के अतिधारण के प्रति उसकी सहमति के समतुल्य थी; और उस प्रयोजन को दृष्टिगत रखते हुए जिसके लिए भाड़ेदारी उत्पन्न की गई थी, प्रतिवादी उस समय से सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के उपबंध के अंतर्गत मास-दर-मास का भाड़ेदार बन गया। शीयर, न्यायमूर्ति ने इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस की यद्यपि उनकी राय में वी. यदि कोई आवधिक भाड़ेदारी बिल्कुल उत्पन्न हुई थी, तो यह मास-दर-मास थी न कि वर्ष-दर-वर्ष। तथापि, शीयर, न्यायमूर्ति के निर्णय के उत्तरार्ध में ऐसी टिप्पणियां हैं, जो यह दर्शाएंगी कि उनकी राय में, वाद के स्वीकृत तथ्यों से प्रत्येक एक वर्ष के लिए दो पट्टों के सृजन का उचित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है। विद्वान न्यायाधीश, तथापि, इस बारे में निश्चित नहीं थे कि क्या प्रतिवादी कभी वादी का भाड़ेदार बना। उन्होंने कबूलियत में अंतर्विष्ट नवीनीकरण खंड की प्रकृति पर चर्चा की और इसे अनिश्चितता के लिए शून्य अभिनिर्धारित किया। उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के आधार पर प्रतिवादी की दलील को भी नकार दिया। उनका निष्कर्ष यह था कि इन बिंदुओं के संबंध में चाहे जो भी दृष्टिकोण अपनाया जाए, प्रतिवादी के पास वादी के बेदखली के दावे के लिए कोई वैध बचाव नहीं था और परिणामस्वरूप अधीनस्थ न्यायालयों का निर्णय सही था। यह इस निर्णय का औचित्य ही है जिसे इस अपील में हमारे समक्ष चुनौती दी गई है।

श्री सीतलवाड़ ने, अपने पक्षकार के वाद के समर्थन में, 1913 के प्रधान के पट्टे की सहायता नहीं ली है; न ही उन्होंने 1924 की कबूलियत और उसमें अंतर्विष्ट नवीनीकरण के प्रसंगिदा पर कोई अवलम्बन किया है। उन्होंने हमारे समक्ष इस बात का विवाद नहीं किया है कि रिसीवर को किए गए भुगतान वास्तविकता में वादी को किए गए भुगतान थे, और यह स्वीकार किया है कि उनके पक्षकार द्वारा भुगतान किए जाने और रिसीवर द्वारा वाद परिसर के संबंध में भाड़ा स्वीकार किए जाने के कारण विवक्षा द्वारा एक भाड़ेदारी उत्पन्न की जा सकती थी। उनका तर्क, जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है, यह है कि भाड़े के

भुगतान और स्वीकृति के कारण, प्रत्येक एक वर्ष के लिए दो भाड़ेदारियां थीं, जो लगातार दो वर्षों के लिए उत्पन्न की गई थीं; परंतु पक्षकारों के बीच भूस्वामी और भाड़ेदार का संबंध दूसरे वार्षिक पट्टे की समाप्ति पर समाप्त हो गया। चूंकि तब से सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 द्वारा विचारित प्रतिवादी द्वारा कोई अतिधारण नहीं किया गया था, दिसम्बर, 1926 के पश्चात किसी भी समय कोई विद्यमान भाड़ेदारी नहीं थी, और वर्ष 1943 में संस्थित वादी का वाद स्पष्ट रूप से समय-बाधित था।

वादी-उत्तरदाता की ओर से उपस्थित होने वाले, श्री डे ने, दूसरी ओर, यह तर्क दिया है कि भाड़ेदारी जो वर्ष 1925 में भाड़े के भुगतान और स्वीकृति द्वारा उत्पन्न की गई थी, आरंभ से ही सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के उपबंध के अंतर्गत मास-दर-मास की भाड़ेदारी थी। वैकल्पिक रूप से, उन्होंने तर्क दिया है कि यदि वर्ष 1925 में केवल एक वर्ष के लिए भाड़ेदारी उत्पन्न की गई थी, तो उस एक वर्ष के पट्टे की समाप्ति के पश्चात प्रतिवादी ने अतिधारण किया और उसके कब्जे में बने रहने के प्रति रिसीवर की सहमति वर्ष 1926 में उससे भाड़े की स्वीकृति द्वारा साक्ष्यित है। इस प्रकार उत्पन्न भाड़ेदारी सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के अंतर्गत मास-दर-मास की भाड़ेदारी होगी। अंततः, यह तर्क दिया गया है कि भले ही प्रत्येक एक वर्ष के लिए लगातार दो भाड़ेदारियां उत्पन्न की गई थीं, स्वीकृत और सिद्ध तथ्य यह दर्शाएंगे कि भाड़ेदार ने दूसरे वार्षिक पट्टे के पश्चात अतिधारण किया और परिणामस्वरूप सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के उपबंध के अनुसार मास-दर-मास की भाड़ेदारी अस्तित्व में आई, भले ही 1926 के पश्चात भूस्वामी द्वारा कोई भाड़ा नहीं मांगा गया था। पक्षकारों के बीच विवाद जहां तक इस अपील का संबंध है, अतएव, निम्नलिखित तीन बिंदुओं तक सीमित हो जाता है :-

(1) 8 मार्च, 1925 को प्रतिवादी से रिसीवर द्वारा भाड़े की स्वीकृति द्वारा उत्पन्न भाड़ेदारी की प्रकृति क्या थी? यदि यह मास-दर-मास की भाड़ेदारी थी, तो प्रतिवादी की ओर

से यह विवादित नहीं है कि अतिधारण का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा और वादी सफल होने का हकदार होगा।

(2) यदि 1925 में एक वर्ष के लिए भाड़ेदारी उत्पन्न की गई थी, तो क्या प्रतिवादी के कब्जे में बने रहने के प्रति भूस्वामी की सहमति का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि मार्च, 1926 में प्रतिवादी से भाड़ा स्वीकार किया गया था?

(3) यदि मार्च, 1926 में भाड़े के भुगतान और स्वीकृति ने एक अन्य वर्ष के लिए भाड़ेदारी अस्तित्व में ला दी थी, तो क्या दूसरे वर्ष के पश्चात कोई अनुगामी भाड़ेदारी उत्पन्न हुई, यद्यपि तब से भूस्वामी द्वारा भाड़े की कोई मांग या स्वीकृति नहीं थी?

जहां तक प्रथम बिंदु का संबंध है, अधीनस्थ न्यायालयों ने इस दृष्टिकोण पर कार्यवाही की है कि दस वर्षों के लिए एक वैध पट्टा उत्पन्न करने के लिए भूस्वामी द्वारा हस्ताक्षरित एक पंजीकृत लिखत आवश्यक था। इस दृष्टिकोण पर हमारे समक्ष कोई प्रश्न नहीं उठाया गया था और हम इस बिंदु पर कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं। अतएव, इस धारणा पर आगे बढ़ते हुए कि यद्यपि पक्षकारों का आशय 10 वर्षों के लिए एक पट्टा उत्पन्न करने का हो सकता था, कोई प्रवर्तनीय पट्टा अस्तित्व में नहीं आया, एकमात्र स्वीकृत तथ्य यह है कि प्रतिवादी रिसीवर की अनुमति से वादी की भूमि के कब्जे में रहा, जो वादी की संपदा का प्रतिनिधित्व करता था, और उसे भाड़ा दिया। इन तथ्यों से एक भाड़ेदारी की उचित रूप से उपधारणा की जा सकती है और अवधारण के लिए बिंदु यह है कि वर्तमान वाद में उत्पन्न भाड़ेदारी की अवधि क्या थी? सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 अधिकथित करती है:

"इसके विपरीत किसी अनुबंध या स्थानीय विधि या प्रथा के अभाव में, कृषि या विनिर्माण प्रयोजनों के लिए अचल संपत्ति का पट्टा वर्ष-दर-वर्ष का पट्टा माना जाएगा, जो पट्टाकर्ता या पट्टेदार की ओर से, भाड़ेदारी के वर्ष के अंत में समाप्त होने वाली छह महीने की सूचना द्वारा समाप्त होगा; और किसी अन्य प्रयोजन के लिए अचल संपत्ति का पट्टा

मास-दर-मास का पट्टा माना जाएगा, जो पट्टाकर्ता या पट्टेदार की ओर से, भाड़ेदारी के महीने के अंत में समाप्त होने वाली पंद्रह दिनों की सूचना द्वारा समाप्त होगा।"

यह धारा निर्वचन का एक नियम अधिकथित करती है जिसे तब लागू किया जाना है जब पक्षकारों के बीच कोई अवधि सहमत न हो। ऐसे मामलों में अवधि का अवधारण उस उद्देश्य या प्रयोजन के संदर्भ में किया जाना है जिसके लिए भाड़ेदारी उत्पन्न की जाती है। इस धारा में सन्निहित निर्वचन का नियम न केवल अनिश्चित अवधि के अभिव्यक्त पट्टों पर लागू होता है बल्कि विधि द्वारा विवक्षित पट्टों पर भी लागू होता है जिनका अनुमान कब्जे, भाड़े की स्वीकृति और अन्य परिस्थितियों से लगाया जा सकता है। यह स्वीकार किया जाता है कि हमारे समक्ष वाले वाद में भाड़ेदारी विनिर्माण या कृषि प्रयोजनों के लिए नहीं थी; इसका उद्देश्य पट्टेदार को भूमि पर संरचनाओं का निर्माण करने में सक्षम बनाना था। इन परिस्थितियों में, इसे मास-दर-मास की भाड़ेदारी के रूप में माना जा सकता था, जब तक कि इसके विपरीत कोई अनुबंध न हो। अब प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान वाद में इसके विपरीत कोई अनुबंध था? श्री सीतलवाड़ इस तथ्य पर बहुत दृढ़ता से अवलम्बन करते हैं कि यहाँ भुगतान किया गया भाड़ा एक वार्षिक भाड़ा था और वह तर्क देते हैं कि इस तथ्य से यह उचित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि पक्षकारों के बीच करार निश्चित रूप से एक मासिक भाड़ेदारी उत्पन्न करने का नहीं था। यह विवादित नहीं है कि इसके विपरीत अनुबंध, जैसा कि सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 द्वारा विचारित है, का अभिव्यक्त अनुबंध होना आवश्यक नहीं है; यह विवक्षित हो सकता है, परंतु यह निश्चित रूप से एक वैध अनुबंध होना चाहिए। यदि यह विधि में कोई वैध अनुबंध नहीं है, तो धारा प्रवर्तनीय होगी और पट्टे की अवधि को विनियमित करेगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कई केसों में यह मान्यता दी गई है कि जिस रीति से भाड़ा अभिव्यक्त रूप से देय है वह एक उपधारणा प्रदान करता है कि भाड़ेदारी उसके अनुरूप एक प्रकृति की है। परिणामस्वरूप, जब आरक्षित भाड़ा एक वार्षिक भाड़ा है, तो यह उपधारणा उत्पन्न होगी कि भाड़ेदारी एक वार्षिक भाड़ेदारी थी जब तक कि

उपधारणा का खंडन करने के लिए कुछ न हो। परंतु वर्तमान वाद में इस नियम को लागू करने में कठिनाई इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि वर्ष-दर-वर्ष की भाड़ेदारी या एक वार्षिक भाड़ा आरक्षित करना केवल पंजीकृत लिखत द्वारा ही बनाया जा सकता है, जैसा कि सम्पत्ति अंतरण अधिनियम⁽¹⁾ की धारा 107 में अधिकथित है। हमारे समक्ष वाले वाद में कबूलियत निस्संदेह एक पंजीकृत लिखत है, परंतु स्वीकृत रूप से यह बिल्कुल भी एक प्रवर्तनीय दस्तावेज नहीं है और परिणामस्वरूप सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती है।

श्री सीतलवाड़ द्वारा वास्तव में इस स्थिति का गंभीरता से विरोध नहीं किया गया है; परंतु वह जो तर्क देते हैं वह यह है कि वार्षिक भाड़े के भुगतान से एक निश्चित वर्ष के लिए पट्टे का उचित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है, और इस तरह की शर्त सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के दोष के दायरे में नहीं आएगी। उनका तर्क यह है कि वार्षिक भाड़े का भुगतान, जैसा कि वर्तमान वाद में किया गया था, मासिक पट्टे के साथ पूरी तरह से असंगत है। हम इस तथ्य से बेखबर नहीं हैं कि कुछ प्रतिवेदित केसों में ऐसा अनुमान लगाया गया है। न्यायमूर्ति रूबेन द्वारा अपने निर्णय⁽¹⁾ में ऐसे ही एक वाद का उल्लेख किया गया है, जहाँ कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक पूर्व निर्णय⁽²⁾ पर अवलम्बन किया गया था। इसी तरह का दृष्टिकोण *मोतीलाल बनाम दार्जिलिंग नगरपालिका*⁽³⁾ में भी अपनाया गया प्रतीत होता है।

परंतु इस दृष्टिकोण पर एक गंभीर आपत्ति यह प्रतीत होती है कि यह पक्षकारों के लिए एक नया अनुबंध बनाने के समान होगा। यहां पक्षकारों का आशय निश्चित रूप से एक वर्ष के लिए पट्टा उत्पन्न करने का नहीं था। पट्टा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए आशयित था, परंतु चूंकि आशय उचित कानूनी स्वरूप में अभिव्यक्त नहीं किया गया था,

(1) देखें देबेन्द्र नाथ बनाम श्यामा प्रसन्ना, 11 सी.डब्ल्यू.एन. 1124, 1126।

(1) अज़ीज़ अहमद बनाम अलाउद्दीन अहमद, ए.आई.आर. 1933 पटना 485।

(2) मोहम्मद मूसा बनाम जगानंद 20 आई.सी. 1.15।

(3) 17 सी.एल.जे. 167।

इसलिए इसे प्रभावी नहीं किया जा सका। यह कहना एक बात है कि वैध करार के अभाव में, पक्षकारों के अधिकार विधि द्वारा उसी रीति से विनियमित होंगे जैसे कि कोई करार अस्तित्व में ही न हो; पक्षकारों के लिए एक नया करार प्रतिस्थापित करना बिल्कुल दूसरी बात है जो वाद के स्वीकृत तथ्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से विरोधाभासी है।

इस संबंध में यह इंगित करना प्रासंगिक होगा कि पूर्व में अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा वादी के वाद को निरस्त किए जाने के विरुद्ध उसके द्वारा दायर की गई द्वितीय अपील में, उच्च न्यायालय ने निश्चित रूप से यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रतिवादी की भाड़ेदारी सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के अंतर्गत मास-दर-मास की थी, और एकमात्र प्रश्न जिसे खुला छोड़ दिया गया था वह यह था कि क्या रिसीवर को किया गया भुगतान स्वयं वादी को किए गए भुगतान के समतुल्य था। इस वाद में प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में स्वीकार किया कि रिसीवर को किए गए भुगतान का वही प्रभाव था जो वादी को किए गए भुगतान का था, और विचारण न्यायाधीश ने वही दृष्टिकोण अपनाया जो पिछले अवसर पर उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया था, कि रिसीवर द्वारा भाड़े के भुगतान और उसकी स्वीकृति से, प्रतिवादी सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के अंतर्गत एक मासिक भाड़ेदार बन गया। जिला न्यायाधीश के समक्ष अपनी अपील में, जो तथ्यों का अंतिम न्यायालय था, एकमात्र आधार जिस पर प्रतिवादी ने विचारण न्यायाधीश के इस निष्कर्ष को चुनौती देने का प्रयास किया, वह यह था कि न्यायिक समिति के निर्णय के कारण रिसीवर एक अनधिकृत व्यक्ति था, जिसने उसकी नियुक्ति को अपास्त कर दिया था और परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति द्वारा भाड़े की स्वीकृति एक मासिक भाड़ेदारी उत्पन्न नहीं कर सकती थी। यह दर्शाता है कि इस वाद के किसी भी चरण में प्रतिवादी का यह पक्ष नहीं था कि चूंकि एक वर्ष के भाड़े का भुगतान किया गया था, इसलिए एक वर्ष के लिए भाड़ेदारी अस्तित्व में आई थी। अतएव, हमारा विचार है कि इस वाद के तथ्यों पर यह अभिनिर्धारित करना पूर्णतः उचित होगा कि 1924 में अपने आरंभ से ही प्रतिवादी की भाड़ेदारी मास-दर-

मास की थी। इस दृष्टिकोण को कई प्रतिवेदित वाद (1) से समर्थन मिलता है, और इन सभी केसों में देय भाड़ा एक वार्षिक भाड़ा था। इस निष्कर्ष पर कोई अन्य प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा और चूंकि हमारे समक्ष सूचना की वैधता पर कोई प्रश्न नहीं उठाया गया है, वादी अपने पक्ष में डिक्री प्राप्त करने का हकदार होगा। इस प्रकार अपील विफल होती है और सव्यय निरस्त की जाती है।

अपील निरस्त।

अपीलकर्ता के अभिकर्ता: आर. सी. प्रसाद।

उत्तरदाताओं के अभिकर्ता: एस. पी. वर्मा।

1) देखें देहेन्द्र नाथ बनाम श्यामा प्रसन्ना, 11 सी.डब्ल्यू.एन. 1124; शेख अकलू बनाम इमामन, आई.एल.आर. 44 कल. 403।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।